योगः कर्मशु कौशलम्

डॉ. सोनल सिंह[1]

सारांश- *मानव जीवन का परम लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति माना गया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी की प्राप्ति स्वस्थ शरीर द्वारा ही संभव है।* ***धर्मार्थिकाममोक्षणारोग्यम मूलमुत्तम्।*** *स्वस्थ शरीर द्वारा ही मानव संसार के समस्त कार्य, धनोपार्जन, लोक-व्यवहार, व्यापार, नौकरी, पारिवारिक-दायित्व, भजन, चिंतन, मनन आदि करने में सक्षम होता है। कालिदास ने भी धर्मसाधन के लिए स्वस्थ शरीर को ही अनिवार्य माना है-* ***शरीमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।*** *(कुमारसम्भवम्) क्योंकि यदि हमारा शरीर विकार ग्रस्त है तो वह क्षीण व दुर्बल हो जाता है और अस्वस्थ व्यक्ति जीवन के समस्त आनंद-धन, ऐश्वर्य, भोजन से विरक्त सा हो जाता है। अस्वस्थ व्यक्ति को प्रकृति के सुंदर दृश्यों में भी रुचि नहीं रहती। निरंतर अपनी व्याधि के विषय में ही चिंतित रहता है। अतः जीवन का वास्तविक आनंद लेने के लिए शरीर का स्वस्थ होना परम आवश्यक है। प्रस्तुत पत्र में योग का विवेचन श्रीमद्भगवतगीता को आधार लेकर की गयी है।*

योग शब्द पाणिनी द्वारा रचित अष्टाध्यायी में लिखित युज धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ जोड़ना, युक्त करना, समाहित करना, एकाग्र होना है, अर्थात् अपने आत्मा को परमात्मा से युक्त करना ही योग है। योग सूत्र के भाष्यकार महर्षि व्यास ने **योगः समाधि** कह कर योग शब्द की व्याख्या की है।

वेद में योग के तीन स्वरूपों का दर्शन होता है।– कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड, ज्ञान काण्ड। कर्मकाण्ड के अनुसार **योगः कर्मशु कौशलम्**[i], **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**[ii] उपासना के अनुसार तथा **संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः**[iii] ज्ञानकाण्ड को प्रदर्शित करता है, अर्थात् जीवात्मा परमात्मा का एकीकरण ही योग है। ऋक् संहिता के अनुसार **यास्मादृते न सिध्यति यज्ञोविपश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वति।।**[iv] अर्थात् हे मनुष्यो ! जिस अनन्त विद्यावाले सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के विना जो कि दृष्टिगोचर संसार है, सो कभी सिद्ध नहीं हो सकता, वह जगदीश्वर सब मनुष्यों की बुद्धि और कर्मों के संयोग को व्याप्त होता व जानता है॥7॥[v]

योगः कर्मशु कौशलम् श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के पचासवें श्लोक में उद्धृत है।–**"बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते। तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्"।।इति।।**[vi] (अर्थात् जब कोई मनुष्य बिना आसक्ति के कर्मयोग का अभ्यास करता है तब वह इस जीवन में ही शुभ और अशुभ प्रतिक्रियाओं से छुटकारा पा लेता है।) इसलिए योग के लिए प्रयास करना चाहिए जो कुशलतापूर्वक कर्म करने की कला है। इस श्लोक में पहली योग की परिभाषा एवं दूसरी योग हेतु निर्देश है। पुनः गीता में 'योग' शब्द के तीन अर्थ मिलते हैं –

१. '**समत्वं योग उच्यते**' समता अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।[vii]

२. '**पश्य मे योगमैश्वर्यम्**' सामर्थ्य, ऐश्वर्य या प्रभाव के लिये प्रयुक्त है।[viii]

३ '**यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया**' समाधि अर्थ में प्रयुक्त है।[ix]

यद्यपि गीता में 'योग' का अर्थ मुख्य रूप से समता ही है, तथापि 'योग' शब्द के अंतर्गत ये तीनों ही अर्थ स्वीकार किये गये हैं। इसके अतिरिक्त योग की तीन परिभाषाएं भी मिलती हैं, जो कि दूसरे अध्याय में ४८वें[x] एवं ५०वें[xi] श्लोक तथा छठे अध्याय के २३वें[xii] श्लोक में निर्दिष्ट हैं।

पुनः 'योग: कर्मसु कौशलम् के भी दो अर्थ लिये जा सकते हैं –

1. कर्मसु कौशलं योग: अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है।

[1] सहायक निदेशक, महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ शोधपीठ, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
drsonal.singh088@gmail.com

२. कर्मसु योग: कौशलम् अर्थात् कर्मों में योग ही कुशलता है।

शुभ कर्मों में कुशलता ही योग है अर्थात् शुभ कर्मों को कुशलतापूर्वक करना ही योग है। यानि मन, बुद्धि एवं शरीर इन तीनों को एक साथ जोड़कर जब हम कोई कार्य करते हैं तो निश्चित ही उस कार्य में कुशलता या संपूर्ण दक्षता प्राप्त होती है, जिसे योग कहते हैं। व्यावहारिक रूप से यह अर्थ उचित प्रतीत होता है, अलौकिक परिप्रेक्ष्य में इसका अर्थ यह है कि यदि कुशलतापूर्वक मन, बुद्धि एवं क्रिया तीनों के ही संयोग से जप-तपादि अनुष्ठान किया जाए तो निश्चित ही अभीष्ट शक्ति से योग होता है, तथा मनोरथसिद्धि होती है । पुनः श्रीमद्भगवतगीता में प्राप्त है –**"योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्ध्यसिद्ध्यो: समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते"**[xiii]।। (अर्थात् हे धनञ्जय! तुम योग में स्थित होकर शास्त्रोक्त कर्म करते जाओ। केवल कर्म में आसक्ति का त्याग कर दो और कर्म सिद्ध हो या असिद्ध अर्थात् उसका फल मिले या फिर न मिले, इन दोनों ही अवस्थाओं में अपनी चित्तवृत्ति को समान रखो। अर्थात् सिद्ध होने पर हर्ष एवं असिद्ध होने पर विषाद अपने चित्त में मत आने दो। यह सिद्धि एवं असिद्धि में सम-वृत्ति रखना ही योग है ।)

अर्थात् 'योग' शब्द कर्म का बोधक है। कई विद्वानों ने योग का अर्थ परमात्मा से माना है यानी परमात्मा से सम्बन्ध रखते हुए कर्म करो अर्थात जो कुछ करो वह परमात्मा को प्रसन्न करने के ही उद्देश्य से करो और कर्मों को परमात्मा को ही अर्पण कर दिया करो।

योगः कर्मशु कौशलम् पर विचार करते हुये प्राप्त होता है कि अगर शुभ-कर्मों को ही कुशलतापूर्वक करने का नाम योग मानें तो मनुष्य कुशलतापूर्वक किये हुए शुभ-कर्मों के फल से बंध जाएगा। कहा भी है– **फले सक्तो निबध्यते**;[xiv] अत: उसकी स्थिति समता में नहीं रहेगी और उसके दुखों का नाश नहीं होगा, इन्हीं समस्याओं के समाधान हेतु प्रभु ने योग या कर्मयोग का सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए उपदेश किया कि बिना आसक्ति रखे कर्म करना ही योग है, जिससे कारण कर्म के फल अर्थात् भोग से सम्बन्ध छूट जाता है और अन्तत: मुक्त होने के कारण दुःख भी समाप्त हो जाते हैं। इसी कारण प्रभु ने 'योग' को दु:ख के संयोग का वियोग भी ही माना है –**तं विद्याद्दु:खसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।**[xv] जिसमें दुःखों के संयोग का ही वियोग है, उसी को 'योग' नाम से जानना चाहिये। उस ध्यान योग का अभ्यास प्रसन्न मन से, चित्तसे निश्चयपूर्वक करना चाहिये।) अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है।

इस प्रकार जब हम योग की व्याख्या समाज में करते हैं तो जनसाधारण के मन में प्रश्न उठता है कि वास्तव मे 'योग क्या है'**?** जब हम व्यायाम कर सकते हैं तो फिर योग क्यों? उत्तरस्वरूप यह है कि योग का अर्थ है 'जोड़ना'। शरीर व मन को परस्पर जोड़ना ही 'योग' है। पतंजलि-योगसूत्र के अनुसार शरीर, मन, व मस्तिष्क में तादात्म्य स्थापित कर मानव को स्वस्थ, ऊर्जावान, सक्रिय बनाने की कला ही 'योग' है क्योंकि कभी हम शरीर से स्वस्थ होते है, पर मन अशांत होता है और कभी मन शांत है तो कभी शरीर लाचार हो जाता है। ऐसे में हम योगासनों के माध्यम से स्वस्थ तन, प्रसन्न व शांत मन की प्राप्ति करते हैं। श्रीमद्भगवतगीता में **'**समत्वं योग उच्यते'(२/४८) कहकर योग की अत्यन्त सारगर्भित व्याख्या की गई है। कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ संतुलन, समत्व, सामंजस्य है, वहीं योग है। इसके विपरीत जहाँ संघर्ष, असामंजस्य, असंतुलन, असंगति है, वहीं रोग है। प्रायः लोग अपने परिवार, समाज, व्यवसाय, नौकरी में सही तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाते और परिणाम स्वरूप अशांति, संघर्ष, बैर, व्याधि, रोग उनके जीवन का अंग बन जाते है।

योग के अनुसार वीणा की मधुर ध्वनि तभी सुनाई पड़ती है, जब उसके सभी तार कसे हो। उसी प्रकार हमारे शरीर व मन के भी तारो में संतुलन हो तो हमारी जीवन में भी मधुर झंकार प्रस्फुटित हो उठेगी। यदि हम अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहते हैं, साथ ही हड्डियों की लचक, पुष्ट मांसपेशी, शरीर में

सुचारू रूप से रक्त संचार, शरीर के सभी अंगों- हृदय, मस्तिष्क, गुर्दे, पाचन-तंत्र, श्वास- तंत्र आदि को पुष्ट करना चाहते हैं तो निश्चित ही योगासनों से हमें लाभ प्राप्त होंगे। वस्तुत: योगासन शरीर को स्वस्थ रखने की एक पद्धति है, जिसमें शरीर में उत्पन्न समस्त व्याधियों का योगासन द्वारा उपचार व निदान किया जा सकता है। योगासनों से शरीर लचीला बनता है, सभी ग्रंथियों में रस-स्राव नियंत्रित होता है, एकाग्रता व शांति का अनुभव होता है, सहन-शीलता, दृढ़ता आत्मसंयम आदि गुणों का विकास होता है, तथा मन पर नियंत्रण होने के कारण सूक्ष्म शरीर सकारात्मक भाव से प्रभावित होता है। श्रीमद्भगवतगीता में शरीर को क्षेत्र कहा गया है- **इदं शरीर कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते**[xvi] (जिस प्रकार खेत में बोये गये बीजों के अनुरूप ही फल प्राप्त होता है, उसी प्रकार शरीर रूपी खेत में उत्तम कर्म संस्कारों का वपन करना चाहिये।) अपने शरीर की प्रकृति को जानकर रक्षण करना हमारा ही दायित्व है। पर यह कितनी विडंबना है कि हर व्यक्ति देश, विदेश, भूगोल, खगोल, विज्ञान आदि की पूर्ण जानकारी रखता है पर अपने ही शरीर के पूर्ण विज्ञान को जानने का प्रयास नहीं करता। गलत दिनचर्या के कारण व्यक्ति अपने शरीर को असंख्य व्याधियों का शिकार बना लेता है। अतः अपने जीवन में योग को अपनाए और **'जीवेम शरदः शतम्'**[xvii] को सच करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. श्रीमदभगवतगीता,
2. ऋग्वेद
3. योग सूत्र
4. याज्ञवल्यक् स्मृति

---

[i] श्रीमदभगवतगीता,(2.50)

[ii] योग सूत्र 1/2

[iii] याज्ञवल्यक् स्मृति 1.9

[iv] ऋग्वेद मण्डल-1, सूक्त 18, मन्त्र-7

[v] https://vedartham.com /

[vi] श्रीमदभगवतगीता,(2.50)

[vii] श्रीमदभगवतगीता, **(२/४८)**

[viii] श्रीमदभगवतगीता, **(९/५)**

[ix] श्रीमदभगवतगीता, **(६/२०)**

[x] श्रीमदभगवतगीता, योगस्थः कुरुकर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 2.48।।

[xi] श्रीमदभगवतगीता, "योग: कर्मसु कौशलम्" (गीता २/५०)

[xii] श्रीमदभगवतगीता, तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।(गीता ६/२३)

[xiii] श्रीमदभगवतगीता, **(२/४८)**

[xiv] श्रीमदभगवतगीता(5.12)

[xv] श्रीमदभगवतगीता**(६/२३)**

[xvi] श्रीमदभगवतगीता(13.2)

[xvii] संजू, डॉ. सुप्रिया, शोध मंथन ISSN (P): 0976-5255 (e): 2454-339X Impact Factor 6.726 (SJIF) मूल-अथर्वेद काण्ड-19, सूक्त 67)